*अपराजिता* : वर्ष 53 अंक 01: 2025
स्थापना वर्ष : 1972 (प्रिंट), 2025 (ऑनलाइन)

# जैनेन्द्र के उपन्यास साहित्य में नारी की विचार स्वातंत्र्य की समस्या

डॉ. उपेन्द्र नाथ दुबे
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग

सामाजिक उद्देश्य को लेकर उपन्यास लिखने की परम्परा प्रेमचन्द्र युग से ही प्रचलित थी जो प्रेपचन्दोन्तर युग में समाप्त नहीं हुई लेकिन कुछ समय के लिए क्षीण अवश्य हो गयी थी। किन्तु देश के विभाजन के समय की सर्वतोमुखी अराजकता ने लेखक को अपने प्रति और सजग कर दिया। ''उसकी अंतर्मुखता भंग हो गई और वह सामाजिक उद्देश्य को लेकर नये जोश से लिखने लगा। अब वह सामाजिक विघटन के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के प्रति दिनों दिन बढ़ती हुई खाई को पाटने पर बल देता था। इसलिए अपनी कृतियों के माध्यम से उपन्यासकार व्यक्ति और समाज के सामंजस्य की ओर बढ़ा''।

जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों के अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से समाज को दर्शाना चाहा है। इसलिए उन्होंने सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं को प्रत्यक्ष रूप से अपने उपन्यासों का विषय बनाने के बजाय व्यक्ति के अन्तर्मन की जटिलताओं और द्वन्द्वों को विशद रूप से वर्णित किया है। परोक्ष रूप से इन प्रश्नों पर विचार किया है। उन्होंने व्यक्ति के जीवन में ही समाज के विस्तार को समेटने का प्रयास किया है इसलिए व्यक्तिगत समस्याओं एवं प्रश्नों तक सीमित रहकर भी वे समाज के विस्तृत एवं विविध प्रश्नों तक जा पहुँचते हैं। डा0 रामदरश मिश्र के अनुसार सामाजिक उपन्यास कारों ने नारी जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया किन्तु वह नारी अभिजात कुलों की महिमामयी नारी या रीति परम्परा की विलासिनी नारी नहीं थी। वरन् सदियों से सामाजिक और पारिवारिक दमन के दुहरे चक्र में पिसती, बेबसी, अपमान और प्रताड़ना के जाल में छटपटाती समाज के लिए अपना सर्वस्व लुटाती नारी थी।

जैनेन्द्र के उपन्यास साहित्य में नारी की वर्तमान समस्याओं का आकलन तो होता ही है, पर इसके साथ ही समाज की पूर्व प्रथाओं मूल्यों के सन्दर्भ में नवीन समजा का निर्माण भर किया जाता है। उपन्यास और समाज का सीधा सम्बन्ध होता है। अतएव सके विस्तृत फलक में समाज की दुर्बलता और सबलता सफलता के साथ चित्रित हुआ करती है।

जैनेन्द्र जी की नारी की सामाजिक समस्याओं पर विचार करते समय लेखक का दृष्टिकोण विशेष रूप से उभरकर सामने आता है।

विचार स्वातंल्य की समस्या:-

जैनेन्द्र जी की नारी जाति के प्रति श्रद्धा है। वे उसकी गहराइयों में सदैव मातृत्व देखते हैं। वे स्त्री स्वातंल्य के विरूद्ध हैं, स्त्री क्या चाहती है ? अधीनता और स्वतंत्रता, शायद एक साथ दोनो चाहती हैं, स्वतंत्र होकर किसी को अपने अधीन रखना, और पूरी अधीन रहकर किसी को अपने ऊपर सर्वथा स्वतंत्र पाना। ये दो तट इतिहास में कभी ही स्त्री के निकट (अथवा पुरूष) के ही पाये हैं।

इसी प्रकार इला को स्वतंत्रता के प्रश्न पर जय की टिप्पणी है- ''इला स्वतंत्र है पर स्वतंत्रता क्या कहीं है? स्वतंत्र वह है तो सब है। सब कही हो, अन्य जिसके लिए कुछ रह न पाये, वही स्वतंत्र। खण्डित ''मैं'' का तंत्र भला कभी चला है, चल सकता है ? .....इला स्वतंत्र नहीं है, मैं स्वतंत्र नहीं हूँ, कोई

स्वतंत्र नहीं। तब युक्त और अन्त में परस्पर एक नियमित की डोर में पिरोए हैं।

''मुक्तिबोध'' उपन्यास में भी जैनेन्द्र जी ने नारी स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में विचार किया है। ''स्वतंत्रता क्या सचमुच कोई चीज होती है ? जब तक अपने ही इतर अनेकों ''पर'' मौजूद है, तब तक ''स्व'' का कोई अपना तंत्र शायद नहीं चल सकता।

जैनेन्द्र के इला की विचारधारा का आधार सांस्कृतिक है। इसका कारण बताते हुए कुछ समीक्षक शायद जैनेन्द्र को पुराणपंथी या दकियानूसी कहने का दुस्साहस करें। शायद वे स्त्री हृदय के अन्तरंगों से ठीक परिचित नहीं है। वे जानते हैं कि स्त्री कब क्या लक्ष्य करती है। कान्त सुखदा को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। श्रीकान्त सुनीता को ''अवर क्वेन केनड़ू नो रांग'' कहकर शान्त करता है। नरेरा भुवन मोहिनी को मुक्त रूप से विचरने दता है किन्तु इसमें से कोई भी स्त्री अपने आप से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं है क्यों कि वे भीतर ही भीतर अपने ऊपर अंकुश रखने की कामना करती है। सुखदा के कथनानुसार ''स्त्री को रहा देना, उसे न समझना है। गति वह उतना नहीं चाहती जितनी स्वीकृति चाहती हैं। स्वीकृति में दूसरे का अपने पर स्वत्व, शायद स्वामित्व भी चाहती हैं। इस दृष्टि से जैनेन्द्र स्त्री स्वातंत्र्य के नारे का विरोध करते हैं। स्त्री स्वातंत्र्य और कुछ नहीं मातृत्व से बचने की चाह है, लेकिन स्त्री भूलती है, अगर वह अपने प्रेयसी रूप पर मुग्ध है। वह रूप छलना है। वह अनित्य है क्षणिक है और अगर उसमें मातृत्व का फल नहीं है तो वह निष्फल है, अन्धकार है। स्त्री की सार्थकता मातृत्व है। मातृत्व दायत्वि है। वह स्वातंत्र्य नहीं है।

कल्याणी तो अपने में सर्वगुण सम्पन्न होते हुए पति का अंकुश सहर्ष स्वीकार करती है। क्यों कि इसी में उसको संतुष्टि मिलती है।अभिप्राय यह है कि जैनेन्द्र का दृष्टिकोण नारी निरंकुशता के विरूद्ध है। वे उसमें सदैव मातृत्व का दायित्व देखने की अपेक्षा रखते हैं। शायद वर्षों की गिनती पर ध्यान देकर कोई यह भूलकर जाय पर स्त्री कभी छोटी नहीं होती। वह हर अवस्था में भक्ति की अधिकारिणी है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी पात्र एक दूसरे से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उनके स्त्री पात्रों में चरित्र के मूल में उनके हृदय की झलक मिलती है। जैनेन्द्र के नारी पात्र प्राचीन रूढ़ियों के दास हैं। समाज के बन्धनों को तोड़ना फोड़ना तो उनके लिए दूर की बात है। ये उनसे कभी बाहर नहीं जा सकते। उनकी नायिकायें अपनी समस्याओं के सागर में स्वयं लीन हो जाती हैं। महादेवी जी के साथ मानो जैनेन्द्र जी भी कहते हैं- ''एक मिटनें में सौ वरदान''

सन्दर्भ


सं. सुषमा प्रियदर्शिनी- हिन्दी उपन्यास, डॉ. रणवीर रांग्रा, लेख- प्रेमचन्दोन्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 168

सं. सुषमा प्रियदर्शिनी- हिन्दी उपन्यास, डॉ. रामदरशर मिश्र, लेख- समाजवादी और सामाजिक उपन्यास, पृ. 58

डॉ. सच्चिदानन्द राय- हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना, पृ. 241

जैनेन्द कुमार- जयवर्धन, पृ. 125

जैनेन्द्र कुमार- मुक्तिबोध, पृ. 14

जैनेन्द्र कुमार- सुनीता, पृ. 227

जैनेन्द्र कुमार- सुखदा, पृ. 83

जैनेन्द्र कुमार- कल्याणी, पृ. 71

जैनेन्द्र कुमार- व्यतीत, पृ. 105

गंगा प्रसाद पाण्डेय- हिन्दी कथा साहित्य पृ. 100


* * *